प्रपत्ति प्रभा स्तोत्रम्

अनन्त श्री विभूषित
स्वामी श्रीमद् रामहर्षणदास जी महाराज

NOT FOR SALE

All rights reserved

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

पुस्तक प्राप्ति स्थान

श्री रामहर्षण सेवा संस्थान
परिक्रमा मार्ग नया घाट
अयोध्या(उ.प्र.) - मो. 7800126630

Important Notice -

This e-book is being provided free of cost by Shri Ram Harshan Seva Sansthan, Ayodhya for read only.

आवश्यक सूचना -

यह ई-पुस्तक श्री राम हर्षण सेवा संस्थान, अयोध्या द्वारा केवल पढ़ने के लिए इंटरनेट पर नि:शुल्क उपलब्ध करायी जा रही है।

।। श्री सद्गुरु चरणकमलेभ्यो नमः।।

।। श्री सीतारामाभ्यां नमः।।

।। श्री आञ्जनेय नमः।।

प्रपत्ति प्रभा स्तोत्रम्

* प्रणेता *

अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्रीमद् रामहर्षणदास जी महाराज

श्री रामहर्षण कुञ्ज, श्रीधाम अयोध्या जी

टीकाकार : श्री आचार्यचरण किंकर हरिगोविन्द दास, रीवा

प्रकाशक :

प्रकाशन विभाग, श्री रामहर्षण कुंज, परिक्रमा मार्ग,
अयोध्या (उत्तर प्रदेश), दूरभाष : ०५२७८-२३२३१७
चतुर्थ आवृत्ति : २०००

श्री जानकी नवमी (विक्रम सं. २०६६)
न्यौछावर : रु. १० मात्र

सौजन्य से : श्री जयरामदास तिवारी जी,
सद्गुरु ट्रांसपोर्ट, कटनी (म.प्र.)

॥ ॐ नमः सीतारामाभ्याम् ॥
॥ हं हनुमते नमः ॥
॥ गुं गुरवे नमः ॥

।। प्रपत्ति प्रभा स्तोत्रम् ।।

हे सीते करुणार्णवे धरणिजे हे हे कृपा विग्रहे,
हे श्री पुरुषकार वैभवयुते हे हे दया सागरे।
हे रामे रघुनाथ पाद निकटे निक्षेप्य मां शोभने,
रामं प्रार्थय त्वं सदा पतिप्रिये हे हे रमे रक्षमाम् ।।१।।

हे श्री सीता जी आप करुणा की सागर, कृपा स्वरूपिणी, पुरुषकार – वैभव से युक्त अर्थात् श्रीराम जी से मिलने के लिए जीव की अगुवाई करने वाली, धरणि पुत्रि, श्रीराम जी की प्रियतमा राजकिशोरी जी मुझे श्रीराम के श्रीचरणों में डालकर, हे पति प्रिये श्रीरमा जी श्रीराम जी से मेरे संरक्षणार्थ प्रार्थना करें (और इस विधि से) मेरी रक्षा करें ।।१।।

हे सीते तव स्वामि सेवन विधौ लब्ध्वा कदा कौशलम्,
दासश्शान्ति सुधासरोवरलये तापन्नु संक्षेप्स्यति।
हे श्यामे प्रणिपातमात्र सुखदे काकस्य क्लेशापहे,
दीनं मामवलोकयाशु सुभगे कारुण्यकञ्जेक्षणे ॥२॥

हे श्री सीता जी ! यह दास कब आपके स्वामी श्रीराम जी की सेवा की विधि में कुशलता प्राप्त कर, शान्ति के अमृत सरोवर में अवगाहन कर निश्चितरूपेण अपने त्रितापों (दैहिक दैविक एवं भौतिक) के सन्ताप को कुछ कम कर सकेगा ? हे प्रणाम मात्र से (प्रसन्न होकर) (जीव को) सुख प्रदान करने वाली तथा काक रूपधारी इन्द्र पुत्र जयन्त के कष्ट का निवारण करने वाली करुणापूर्ण कमल-नेत्री, सुन्दरी श्रीश्यामाजी, मुझ दीन पर अविलम्ब कृपा दृष्टि का प्रसाद करें ॥२॥

पादाम्बुजं सौरभ संयुतं श्री,
स्ते योगिवर्यादिकध्यानगम्यम् ।
दासस्य सर्वेष्टकरं भवापहं,
सीते सुरक्षां कुरु देहि दास्यम् ॥३॥

हे श्री श्रीजी ! आपके सुगन्धियुक्त चरण–कमल श्रेष्ठ योगिजन के भी ध्येय हैं, आपके निजदास के तो सभी इच्छित वस्तुओं के प्रदाता तथा भव (जन्म–मरण रूपी संसार चक्र) से मुक्त करने वाले हैं, अस्तु हे श्री राजकिशोरी जी मेरी रक्षा करें तथा मुझे अपना दासत्व प्रदान करें ॥३॥

संसार सिन्धो पतितोऽस्म्यहन्तद्,
दैन्यं विलोक्यासु प्ररक्ष दीनम् ।
नाऽन्या गतिर्जानकि त्वां विनाऽस्ति,
हा हाऽऽर्तरावं श्रृणु कर्णदेयम् ॥४॥

हे श्री जनकराजनन्दिनी जी ! मैं संसाररूपी सागर में गिर पड़ा हूँ अत: मेरी इस दीनता को देखकर मुझ दीन की रक्षा करें । आपके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई आश्रय नहीं है अत: मेरे इस हाय हाय के करूण-क्रन्दन को कृपया कान लगाकर सुनें ॥४॥

हे हे विदेह तनये ! वसुधा सुपुत्रि !
माधुर्य मूर्ति महिमा वधिराम राज्ञि ।
आनन्द केलि निरते रसराज रामे,
दीनोऽहमद्य भवतीं शरणागतोऽस्मि ॥५॥

हे श्री विदेहराजपुत्रि, भूमि–नन्दिनी, सौन्दर्य की साक्षात विग्रहे अपरिमित महिमामयी श्री रामजी की महारानी जी तथा आनन्दमयी क्रीड़ा में श्री रामजी महाराज को आनन्दित करने वाली रामा जी, मैं दीन आपकी शरण में आ गया हूँ ॥५॥

जगत्कारणरूपाञ्च जगदानन्द दायिनीम् ।
आदिशक्तिमहामायां ब्रह्मेव ब्रह्मवर्चसीम् ॥६॥
परमाह्लादिनीं श्यामां सुभगां रामवल्लभाम् ।
विदेह तनयां वन्दे सीतां प्रणव रूपिणीम् ॥७॥

इस जगत की कारण स्वरूपा (अर्थात् उत्पन्न करने वाली) तथा जगत् को आनन्द की प्रदात्री ब्रह्मा के समान ब्रह्म वर्चस (तेज) को धारण करने वाली, आदिशक्ति, महामाया, परमानन्द की प्रदात्री, द्वादश वर्षिया, सौन्दर्य की मूर्ति तथा ओंकार स्वरूपिणी विदेह पुत्री श्रीराम रघुनन्दन जी की प्रियतमा श्री सीता महारानी की मैं वन्दना करता हूँ ॥६-७॥

सर्वश्रेयः प्रदे सीते, शरणागत वत्सले ।
कृपाकटाक्ष पातेन पाहि मां गृहमागतम् ॥८॥

समस्त कल्याणों की प्रदात्री एवं शरण में समागत जीव पर मातृ स्नेहमयी श्री राजकिशोरी सीता जी, अपने घर आये हुए मुझ जन पर अपनी कृपा-दृष्टि करके मेरी रक्षा करें ॥८॥

स्वपदे परमां प्रीतिं देहि मामतिनिर्मलाम् ।
रामप्रेमपराकाष्ठां लभेयन्त्वत्प्रसादतः ॥९॥

आप अपने श्री चरणों में मुझे परम प्रीति प्रदान करें, श्री राम जी के प्रेम की परिपक्व स्थिति तो आपकी कृपा से प्राप्त हो जावेगी ॥९॥

ॐ अयोध्यानगरे रम्ये दिव्यकल्पतरोस्तले ।
ब्रह्मा-विष्णु-महेशाद्यैर्देवता भिस्समावृतम् ॥१०॥
सखिभ्रात्रादिभिर्देवं दासीदास-समन्वितम् ।
सिद्ध-चारण-गन्धर्वैः पूजितञ्च महर्षिभिः ॥११॥

(अयोध्याधिपति श्रीराम जी अपनी परम प्रियतमा श्री विदेहराज नन्दिनी जी के समेत) अत्यन्त रमणीय श्री अयोध्या नगर (के प्राँगण) में दिव्य कल्प वृक्ष के नीचे ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर प्रभृति देवों सखिजन, बन्धु, दासी, दास तथा सिद्ध, चारण, गन्धर्व और महर्षियों से समावृत (घिरे हुए विराजे) हैं ॥१०-११॥

सीतया सहितं राममानन्दाऽमृत सागरम् ।
रसेनाऽऽप्लावितं नित्यं रसदं रसरूपिणम् ॥१२॥

श्री सीता जी के साथ श्रीराम जी आनन्दरूपी अमृत के सागर हैं रस से परिपूर्ण, नित्य (शाश्वत्) रस के प्रदाता एवं रस के मूर्तिमन्त विग्रह हैं ॥१२॥

परं ज्योतिः परं धाम परं कारणकारणम् ।
मायातीतं महानन्दं सत्यं सच्चिन्मयं प्रभुम् ॥१३॥

श्री सीताराम जी अत्यन्त ही प्रकाश स्वरूप, तेजोमय, कारण के भी कारण अर्थात् ब्रह्मादिकों के भी स्रष्टा, माया से परे अर्थात् मायिक त्रिगुण (सत्, रज और तम) जिनका स्पर्श भी नही कर पाते, महान् आनन्द के स्वरूप, सदा सत्य, सत् और चित् से युक्त परम प्रभु (सामर्थ्यशील) हैं ॥१३॥

सर्वगं सर्वसर्वस्वं सर्वाधारं सनातनम् ।
शरण्यं सर्वलोकानां शरणागतवत्सलम् ॥१४॥

जिनकी सर्वत्र गति है, सभी के आधार अर्थात् मूल कारण हैं, सभी ब्रह्माण्डों और तत्वों के सार सर्वस्व हैं, शाश्वत जीव मात्र के शरण प्रदाता तथा शरण में आये जीवों के प्रेमी हैं ॥१४॥

परेशं परमात्मानं परब्रह्म परात्परम् ।
दीनाऽनुकम्पिनं रामं वन्दे दशरथात्मजम् ॥१५॥

जो सबके परम नियन्ता, समस्त आत्माओं की भी परम आत्मा सबसे परे ब्रह्म तत्व तथा परे से भी परे अक्षरातीत हैं- (इन समस्त महनीय विशेषणों से विशिष्ट) श्री दशरथ नन्दन श्रीराम जी की मैं वन्दना करता हूँ ॥१५॥

शत शशि सुखसारं कोटि कन्दर्प पारं,
जलधरतनु श्यामं सौम्य शोभाभिरामम् ।
नव नलिन सुनेत्रं मोदमाधुर्य क्षेत्रं,
मधुर-मधुर हास्यं फुल्लश्री पंकजाऽऽस्यम् ॥१६॥

शत्-शत् (सैकड़ों) चन्द्रमाओं से जन्य शीतलता और आह्लाद स्वरूप सुख के भी सारभूत सुख, करोड़ों कामदेवों के एकत्री-भूत सौन्दर्य से भी अति सुन्दर, सजल एवं नील मेघों के समान श्याम शरीर वाले, सौम्यता और शोभादि कायसम्पत्तियों से परिपूर्ण अति मनोहर, नवीन उत्फुल्ल कमल सदृश नेत्रों वाले, समस्त आनन्द और मधुरता के आधार भूमि, विकसित कमल सदृश शोभा संयुक्त मुख में मधुर-मधुर हास्य (मुस्कान) से परिपूर्ण ॥१६॥

रविकुल रवि रामं पुण्य सुश्लोक्यनामं,
हृतजन परितापं चारूचापं मनोज्ञम् ।
विहरति पुरिनित्यं वामसीता सुभृत्यं ,
ममित गुण समुद्र नौमि श्रीरामभद्रम् ॥१७॥

सूर्यवंश के सूर्य (सूर्य वंश को उजागर करने वाले) पावन कीर्तिवन्त, (उपर्युक्त) असीमगुणों के महोदधि, सुन्दर धनुष-बाण को धारण किए हुए अपनी प्रियतमा श्री सीताजी एवं सेवकजनों के साथ श्री अयोध्यापुरी में विचरण कर अपने स्वजनों के सन्तापहरणकारी श्रीराम जी को नमन करता हूँ ॥१७॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवाऽस्मीति च याचते ।
ददात्यभयमेवाशु श्रृत्वा स्नेहादनुद्रतः ॥१८॥

एक बार भी आप की शरण में आकर " मैं आपका हूँ " यह याचना करते हैं, उसे सुनकर आप प्रेमातुर होकर शीघ्र ही उस याचक को सभी जीवों से अभय प्रदान कर देते हैं ॥१८॥

याचेऽहमद्य शरणं प्रभो ! त्वद्गेह मागतः ।
नाथ नाथेति विरूति कृत्वाऽनाथो मुहुर्मुहुः ॥१९॥

मैं अनाथ, आपके घर में आकर, बार-बार 'हे नाथ-हे नाथ' कर रोदन करता हुआ आपकी शरण (संरक्षण) की याचना करता हूँ ॥१९॥

पापमूर्तीरुदन्नुच्चै र्हा हा रावं करोम्यहम् ।
रदनैस्तृणमादाय त्राहि त्राहि कृपाम्बुधे ! ॥२०॥

मैं पापमूर्ति, अपने दाँतो में तृण (तिनका) दबाकर (दाँतो में तिनका दबाकर निवेदन करना अत्यान्तिक दीनता का प्रतीक है) ऊँचे स्वर से हाय-हाय करुण क्रन्दन कर रहा हूँ, अत: हे कृपा सागर ! मुझ शरण में आये हुए की रक्षा करें, रक्षा करें ॥२०॥

न कृतं स्मर मे राम स्वकं स्मर स्वयं स्मर ।
प्रसीद शरणापन्ने दीने मयि दयां कुरु ॥२१॥

हे श्रीराम जी ! आप मेरे द्वारा किये गये अकृत करण तथा दुष्कृत्यों की ओर ध्यान न दें अपितु अपने स्वयं के पापमोचन एवं दीनोद्धारक स्वरूप का तथा स्वयं के विरद का स्मरण करें और कृपया मुझ शरण में आये हुए दीन पर प्रसन्न हो कर दया दृष्टि करें ॥२१॥

पात्रता मेऽथ नैवाऽस्ति कृपालाभाय यद्यपि ।
प्रपत्तिमार्तिपूर्णां त्वद्धेतुकीन्नकृतवानहम् ॥२२॥

यदि (सत्य कहूँ तो) मुझमें आपकी कृपा प्राप्त करने की पात्रता नहीं है (क्योंकि) मैनें पश्चातापपूर्ण हृदय से (आपको शीघ्र द्रवित करने वाली) आपकी प्रपत्ति (शरण) ग्रहण नहीं की है ॥२२॥

अन्य प्रयोजनत्वाच्च
प्रेम-प्राप्तेर्न योग्यता।
बुध्वाऽपराध निरतः
क्षमायोग्यो न कर्हिचित् ? ॥२३॥

मेरे अन्य प्रयोजन होने (संसार निरत रह कर आपको अपनी प्राप्ति का लक्ष्य न बनाने) के कारण मुझमें आपके प्रेम को प्राप्त कर सकने की योग्यता नहीं है इसके साथ ही स्वयं के अपराध के कार्यों में संलग्न जानकर किसी भी प्रकार क्षमा प्राप्ति की पात्रता भी नहीं पाता ॥२३॥

तथाऽपि त्वं कृपासिन्धुर्दयादृष्ट्या विलोकय ।
संसार सागरे घोरे, ज्ञात्वा मां पतितं प्रभो ॥२४॥

तथापि हे दयासिन्धु प्रभो ! आप घोर संसार (आवागमन के दु:ख स्वरूप) सागर में गिरा हुआ जानकर मेरी ओर कृपा दृष्टि से अवलोकन करने की कृपा करें ॥२४॥

हा राम हा रमण हा करुणैकमूर्ते !
हा नाथ ! हा नवल ! हा स्वरसैकपूर्ते
हा देव ! हा प्रणतपाल ! दयावतार !
द्रक्ष्याम्यहं त्वभयदं परमं कदा नु ॥२५॥

हा श्रीराम, हा आत्मा में रमण करने वाले और रमाने वाले, हा करुणा के एक मात्र विग्रह, हा नाथ हा सदा नूतन, अपने रस से ओत-प्रोत करने वाले रसिक शिरोमणि, हा देवाधिदेव, प्रणत जन पालक, दया के अवतार एवं शरणागत जनों के अभय प्रदाता, हाय ! मैं परात्पर प्रियतम का दर्शन कब प्राप्त कर सकूँगा ? ॥२५॥

निराश्रयो निराधारो निरालम्बोऽस्तसाधनः ।
पापमूर्तिरनाथोऽहं श्रीरामः शरण मम ॥२६॥

मैं समस्त आश्रयों और आधारों से रहित, निस्सहाय विगत-साधन, पापमूर्ति एवं अनाथ हूँ अतएव श्रीराम जी ही मेरे आश्रय और रक्षक हैं ॥२६॥

जगज्जालैश्च सम्बद्धः कामाद्यैर्भ्रान्तचेतनः ।
आत्मदृगज्ञानहीनस्य श्रीरामः शरणं मम् ॥२७॥

एक ओर तो मैं संसार के बन्धनों से बंधा हुआ हूँ और दूसरी ओर कामादि विकारों ने चित्त को भ्रमित कर रखा है, इनसे छूटने के साधन-भूत आत्म दृष्टि (घट-घट में आत्म रूप से परमात्मा विद्यमान है) और ज्ञान से रहित मुझ चेतन के श्रीरामजी ही आश्रय एवं रक्षक हैं ॥२७॥

विक्षिप्तोऽविद्ययायस्तु बाह्य वृत्ति परायण: ।
विषयाग्नि प्रदग्धस्य श्रीराम: शरणं मम् ॥२८॥

मैं जो दु:ख स्वरूपिणी अविद्या माया के कुप्रभाव से विक्षिप्त (पागल) हो चुका हूँ अत: 'अन्तर्वृत्ति' (परमात्म ध्यानरत) न रहकर, 'बाह्य वृत्ति' (संसार निरत) हो गया हूँ । अब विषयों की अग्नि से झुलसते हुए मेरे श्रीरामजी ही आश्रय एवं रक्षक हैं ॥२८॥

दुष्टभाव समासक्तः श्रुतिशास्त्र पराङ्मुखः ।
साधुभावातिरिक्तस्य श्रीरामः शरणं मम् ॥२९॥

दुष्टता के भावों में आसक्त, वेद और शास्त्रों के नियम और सिद्धातों से बहिर्मुख तथा सज्जनता के भावों से विहीन, मुझ जन के श्रीरामजी ही रक्षक और आश्रय-दाता हैं ॥२९॥

कुसङ्गाऽऽनन्दलुब्धश्च, साधुनिन्दारतः सदा ।
रमणीमुख आसक्तः श्रीरामः शरणं मम् ॥३०॥

कुसंग को आनन्दमय मानकर उसमे लुभाये हुए चित्त वाले, सज्जन पुरुषों की निन्दा में सदैव संलग्न तथा नारियों की मुख छबि के अवलोकनरत मुझ दीन के श्रीराम जी ही रक्षक और आश्रयदाता हैं ॥३०॥

ममाऽहं बुद्धिरूपोय: भवासक्तश्च सर्वथा ।
अज्ञानतिमिरान्धस्य श्रीराम: शरणं मम ॥३१॥

मेरी बुद्धि 'मैं' और 'मेरा' इस ममता की स्वरूप बन गई है अर्थात् मुझे अहंता और ममता ने पूर्णतया घेर लिया है और मैं पूर्णतया संसार के वस्तु, संबंध विषय एवं व्यापारों में अत्यन्त आसक्त हो गया हूँ । इस प्रकार अज्ञान रूपी अंधकार से अंधे (चेतन) के श्रीराम जी ही रक्षक और आश्रय हैं ॥३१॥

प्रेमहीन मनाश्चैव, रागद्वेष रत: सदा ।
तत्वावबोध शून्यस्य श्रीराम: शरणं मम ॥३२॥

मन प्रेम से रहित है और राग-द्वेष आदि दोषों में सदैव संलग्न रहता है अस्तु, तत्व ज्ञान से विहीन, मुझ चेतन के श्रीराम जी ही रक्षक और आश्रय हैं (तत्व बोध ! आपात् रमणीय यह संसार माया का कार्य है अस्तु, वस्तुत: भगवत्प्रेम ही परम श्रेय और परमार्थ है) ॥३२॥

जगत्पादाहतस्यास्य दुःख मूर्तेश्च सर्वशः ।
अगतेर्दीनहीनस्य, श्रीरामः शरणं मम ॥३३॥

संसार के पैरों से प्रताड़ित सब प्रकार से (ठुकराये हुए) दुःख के स्वरूप एवं आश्रयहीन मुझ जन के श्रीरामजी ही आश्रय एवं रक्षक हैं ॥३३॥

त्वयि राजाधिराजत्वं कृपामौलित्व मेव च ।
रक्षणीयस्सदा स्वामिन्सर्वथाज्ञान दुर्बल: ॥३४॥

हे स्वामिन् ! आप राजाओं में अधिराज अर्थात् महाराज हैं और कृपालुओं में मूर्धन्य (शिरोमणि) हैं अत: (रक्षा करना तथा कृपा करना, महाराज के इन महान् गुणों को ध्यान में रखकर) आपको सभी प्रकार से इस अज्ञानी दास की रक्षा करनी चाहिए ॥३४॥

परितोदावदाहेन हाऽऽतप्तं भास्वताऽनिशम् ।
दृष्ट्वादीनं कथंराम ! कारुण्यं विजहासिभो ॥३५॥

हे श्रीराम जी ! चारों ओर से दावानल की तीव्र ज्वालाओं से मैं निरंतर जल रहा हूँ । हाय प्रभो ! मुझ दीन को इस दयनीय स्थिति में देखकर भी आप अपनी करुणा से मुख मोड़ रहे हैं ॥३५॥

अहमावध्य बन्धेन दर्पितो वासनामय: ।
विकर्षतीह देहस्थं तवोपेक्षा कथं प्रभो ॥३६॥

हे प्रभो ! मैं जब अहंकार और वासनाओं के (प्रबल) बन्धन में बांधकर खींचा-खसोटा जा रहा हूँ (मेरी इस अत्यन्त दीन-हीन स्थिति में) तब इस शरीर में आप के विद्यमान रहते हुए मेरे प्रति यह आप की कैसी उपेक्षा है ? ॥३६॥

विषयाहि विषेणेदं व्याप्तं हा सकलं वपुः ।
कृपा गारुडिमन्त्रेण स्वस्थं किं न करोषिमाम् ॥३७॥

हे प्रभो ! विषय रूपी विषधर (सर्प) के भयंकर विष से मेरा समग्र शरीर व्याप्त हो चुका है (ऐसी स्थिति में) आप अपनी कृपा के गारुडि मंत्र से मुझे स्वस्थ क्यों नहीं करते हैं ? ॥३७॥

ममत्वमृत्योर्वशगं वीक्ष्यापि समुपेक्षसे ।
मां कथं करूणासिन्धो ! त्वमकिञ्चनगोचरः ॥३८॥

हे करूणासागर ! आप 'अकिंचनगोचर' अर्थात् जिसके कोई और कुछ नहीं है, ऐसे दीन-हीनों पर अहैतुकी कृपादृष्टि करने वाले हैं किन्तु आश्चर्य है कि आप मुझ जैसे अकिंचन को ममत्व रूपी मृत्यु के मुख में देखकर भी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ? ॥३८॥

उपेक्षसे त्वमेवैवं क्व गतिर्मे वदाऽधुना ।
किं तिष्ठेति वदेत्कोऽपि नीचवाचावमानितम् ॥३९॥

प्रभो, यदि अभद्र वाणी से अपमानित मुझ जन की आप ही उपेक्षा करते हैं तो कहिए, फिर मेरी क्या गति होगी ? मुझे तो कोई बैठने के लिए भी नहीं कहेगा ॥३९॥

जयन्तादधिका सत्यं
दुर्गतिर्मे भविष्यति ।
हा हा कं यामि हे नाथ !
त्राहि मां करुणानिधे ॥४०॥

आपसे उपेक्षित होने पर, यह सत्य है कि जयन्त से भी कहीं अधिक मेरी दुर्गति होगी अतः हे नाथ, हे करुणासागर, मैं अब किसके समीप जाऊँ, अब आप ही मेरी रक्षा कीजिये ॥४०॥

फलवन्ति कृतानीह सन्निपत्याऽथ मां भृशम् ।
सन्तपन्ति न तुष्यन्ति प्रोद्दीप्यन्ते यथोत्तरम् ॥४१॥

मेरे दुष्कर्म मुझे फल (परिणाम) देने के लिए मेरे ऊपर टूट पड़े हैं और वे मुझे कष्ट देकर भी संतुष्ट नहीं हैं अपितु उत्तरोत्तर सन्तप्त करते (जलाते) जा रहे हैं ॥४१॥

काल कर्म स्वभावानां त्वं गुणानाञ्च शासिता ।
तस्मात्कारुण्य भावेन दोषानेतान्निवारय ॥४२॥

काल,कर्म, स्वभाव और गुणों के आप शासक हैं अर्थात् ये सभी आप के वश में हैं । अत: कृपा करके आप मेरे काल,कर्म, स्वभाव गुण और जन्म-दोषों का निवारण कीजिये ॥४२॥

माया पतिः हृषीकेशः त्वमेव हृदि प्रेरकः ।
त्वया नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि कथमन्यथा ॥४३॥

आप माया के पति, हृषीकेश अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी और आप ही सभी के हृदय के प्रेरक हैं, अतः आपने मुझे जिस प्रकार और जहाँ नियुक्त कर दिया है वही कार्य कर रहा हूँ और उसके विपरीत कर ही क्या सकता हूँ ॥४३॥

- टिप्पणी -

निवेदन यह है कि यह जीव स्वतन्त्र तो है नहीं, क्योंकि यह मायिक त्रिगुणों से आच्छन्न, इन्द्रियों के वश में और हृदयस्थ परमात्मा से प्रेरित होकर ही कुछ कार्य करता है अत: इसकी कोई स्वतन्त्र एवं स्वयं की कर्तव्यता नहीं है । जब इसकी स्वतन्त्र कर्तव्यता नहीं है तो फिर इसका कर्म बन्धन और तज्जन्य दोष कैसा ? क्योंकि इस जीव से माया, इन्द्रिय और हृदयस्थ प्रेरक की प्रेरणा से कार्य करवाया जाता है और जीव अन्यथा कर ही नहीं सकता है ? यदि प्रभो, फिर भी किसी प्रकार जीव का दोष सिद्ध होता हो, तो माया के पति, इन्द्रियों के स्वामी और प्रेरक तो

आप ही हैं । क्यों न अपनी माया, इन्द्रिय और प्रेरणा को स्वयं संभालें, मुझ बेचारे जीव को व्यर्थ में क्यों पीसा जा रहा है ॥

राज्ञः सर्वसमर्थस्य,
कुमारो भुगिवातुरः ।
वस्त्रालङ्कार गेहानां,
दुष्प्राप्याणां तथान्धसाम् ॥४४॥

(प्रभो, कृपया यह भी विचार कीजिए कि यह कहाँ तक उचित है कि) एक समर्थ राजा का पुत्र घर, वस्त्र, आभूषण तथा ऐसी ही अन्य अप्राप्य वस्तुओं के लिए भूखे की भाँति व्याकुल फिरे ? अर्थात् आप जैसे सर्व समर्थ का पुत्र यह जीव लौकिक और परमार्थिक अभावों का अनुभव करे ? ॥४४॥

भारवाही महादीन: जगत्पादाहतस्तथा ।
प्रेक्षमाणोऽनपेक्षेन त्वयाऽहमति दु:खित: ॥४५॥

मैं तो संसार के लोगों के चरण प्रहार सहता हुआ अपने कर्मफलों का भार ढोता हुआ अत्यन्त दीन-हीन स्थिति को प्राप्त हूँ पर यह तो मेरी विवशता है, किन्तु आपकी ओर से यह अत्यन्त ही दु:ख की बात है कि आप मेरी इस दुर्दशा को निरपेक्ष भाव से देख रहे हैं अर्थात् देखते हुए भी उपेक्षा कर रहे हैं ॥४५॥

कुत्र गच्छामि हा कष्टं
कस्मै स्याद्विनिवेदितम् ।
को वा श्रोष्यति दीनस्य
दुःख वार्ता त्वयाविना ॥४६॥

हाय, (आपकी उपेक्षा को देखते हुए) बड़ा ही कष्ट है । अब मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ और किससे कहूँ ? भला बताइये आपके अतिरिक्त मेरी इस दुःख भरी बात को कौन सुनेगा ? ॥४६॥

त्रिसत्यं शेषभोग्यस्ते
रक्ष्यः सहज इत्यपि ।
संसार कूपे निक्षिप्य राम !
नो पेक्षणं व्यधाः ॥४७॥

मैं तीन बार कहकर इस सत्यता को प्रमाणित करता हूँ कि मैं सहज में ही आपका शेष (अंश) भोग्य और रक्ष्य हूँ । हे श्रीराम जी (आप मेरे इस संबध को जानकर) मुझे संसार रूपी कुएँ में डालकर मेरी उपेक्षा न करें ॥४७॥

यावदागः प्रवीणेन, कृतं कृतमनन्तशः ।
यथाकालमतृप्तेन, मदावेशितचेतसा ॥४८॥

पापाचरण करने में अत्यन्त कुशल, पाप करने में सन्तुष्ट होकर, जितने भी पाप हो सकते हैं, समयानुसार अहंकारपूर्ण चित्त से न करने योग्य (अकृतकरण) बहुत से पाप मैंने किये हैं ॥४८॥

शरणागत दासस्य तव द्वारान्निवर्तनम् ।
नतेऽनुरूपो हे नाथ तथा तस्य पराभवः ॥४९॥

आपकी शरण में आये हुए दास का आपके द्वार से (निराश होकर) वापस जाना तथा उसका पराभव (हार) हे नाथ, आपके विरद के योग्य नहीं है ॥४६॥

एवं जन्म सहस्त्रेण,
शुक्ल कृष्णादि कर्मभि: ।
बद्धोऽस्म्यहं स्वभावेन,
रामभक्ति पराङ्मुख: ॥५०॥

मैं इस प्रकार हजार जन्मों से शुभ और अशुभ कर्मों से स्वाभाविक रूप से बँधा हुआ हूँ और हे श्री राम जी ! इसी के प्रतिफल स्वरूप आपकी भक्ति से विमुख हूँ ॥५०॥

निर्हेतुकृपया दीनं हस्तालम्बेन स्वालयम् ।
प्रापयस्वीकृतं नित्यं नीरुजं निर्भयं कुरु ॥५१॥

(मैं तो भक्तिविहीन अपने अशुभ कर्मों वश आपका धाम प्राप्त करने से रहा, किन्तु) आप अपनी अकारण कृपा से इस दीन का स्वयं हाथ पकड़ कर अपने निज धाम को प्राप्त करवा दीजिए तथा इसे निजधाम में स्वीकार करके सदा के लिए भव-रोग और भयों से रहित कर दीजिए ॥५१॥

याचेऽहं त्वत्पारतन्त्र्यं
शेषत्वं सुस्थिरं सदा ।
त्यक्त्वा सौख्यञ्च
सर्वस्वमशेषत्वं महाफलम् ॥५२॥

मैं अपने सुख और सर्वस्व का सर्वथा त्याग कर, महान फल के रूप में आपकी परतन्त्रता और सदैव स्थिर रहने वाले शेषत्व की याचना करता हूँ ॥५२॥

प्रेमान्नं परमोत्कृष्टं पादपद्मस्य नाथयो: ।
जन्म जन्मनि संयाचे नैष्कर्म्य परमोज्वलम् ॥५३॥

मैं अपने स्वामी और स्वामिनी दोनों ही नाथों के चरण कमलों में अति श्रेष्ठ प्रेम रूपी अन्न की याचना करता हूँ तथा जन्म-जन्म में अत्यंत निर्मल निष्काम भाव चाहता हूँ ॥५३॥

भवद्रूपोदबिन्दूनामदर्शन तृषाऽऽकुल: ।
अतो दिव्याभ निर्वृत्यै ममदृग्गोचरो भव ॥५४॥

आपके दर्शन रूपी जल बिंदुओं के प्राप्त न होने से मेरी दर्शन की प्यास बहुत बढ़ कर व्याकुल कर रही है, अत: आप मेरी इस लोकोत्तर तृषा की शांति हेतु (अपनी रूप छटा के) जल के रूप में नयनगोचर हो जाइये ॥५४॥

एकान्तिकं तु कैङ्कर्यं प्रयाचेऽहं रघुत्तम ।
आत्मलज्जारक्षणार्थं परिधानमनूत्तमम् ॥५५॥

हे रघुवंश शिरोमणी श्रीरामजी ! मैं अपनी (जीवत्व) की लज्जा की रक्षा हेतु आपकी एकान्तिक सेवा रूपी उत्तम वस्त्र की याचना करता हूँ ॥५५॥

सुष्ठु साधु स्वभावस्य भूषणं देहि मे प्रभो ।
भूषितस्त्वत्प्रसादेन भविष्यामि प्रभु प्रिय: ॥५६॥

हे प्रभो ! आप मुझे साधु-स्वभाव का आभूषण प्रदान करें जिससे आपकी कृपा से सुसज्जित होकर अपने प्रभु का प्यारा बन जाऊँ ॥५६॥

स्थानं ते हृदये राम
दातृणाञ्च शिरोमणे ।
प्रदेहि दीनदासाय श्रुत्वा
चार्तिमयी गिराम् ॥५७॥

दानियों में श्रेष्ठ श्रीरामजी, आप मेरी आर्त–वाणी को सुनकर इस दास को अपने हृदय में स्थान देने की कृपा करें ॥५७॥

अकिञ्चनञ्जागतिकं
दृष्ट्वार्तं व्यथितं प्रभो ।
क्षिप्रं कुरु कृपापात्रं
मां दीनं दीनवत्सल ॥५८॥

हे दीनवत्सल प्रभो ! मुझ अकिंचन संसारी जीव को आर्त और पीड़ित देखकर शीघ्र ही अपनी कृपा का दान दें ॥५८॥

रामहर्षण दासेन
प्रार्थनीय: दया हरि: ।
बद्धाञ्जलिरहं भक्त्या
देहि दास्यं सदापर: ॥५९॥

हे श्री हरि, मैं रामहर्षण दास भक्ति भाव से करबद्ध होकर आपसे दया हेतु प्रार्थना करता हूँ मुझे आप अपना शाश्वत दास्य प्रदान करने की कृपा करें ॥५९॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं
ये पठन्ति नरा भुवि ।
प्राप्नुवन्ति हरेर्दास्यं,
कृपां पूर्णां महामना: ॥६०॥

इस भू-लोक में महान् पुण्य फल प्रदाता इस स्तोत्र का जो मानव पाठ करते हैं अथवा करेंगे, उन महामना पुरुषों को प्रभु कृपा से परिपूर्ण दास्य भाव प्राप्त हो । (यह आचार्य श्री के आशीर्वाद रूप में स्तोत्र की फलश्रुति है) ॥६०॥

अनंत श्री विभूषित श्री राम हर्षण दास जी महाराज का अनमोल भक्ति साहित्य

१. वेदान्त दर्शन (ब्रह्मसूत्र व्याख्या)
२. श्री प्रेम रामायण (पंचम संस्करण) सजिल्द
३. औपनिषद ब्रह्मबोध (द्वितीय संस्करण)
४. गीता ज्ञान (द्वितीय संस्करण)
५. रस चन्द्रिका (द्वितीय संस्करण)
६. प्रपत्ति –प्रभा स्तोत्र (चतुर्थ संस्करण)
७. विशुद्ध ब्रह्मबोध
८. ध्यान वल्लरी
९. सिद्धि स्वरूप वैभव (द्वितीय संस्करण)
१०. सिद्धि सदन की अष्टयामी सेवा
११. लीला सुधा सिन्धु (तृतीय संस्करण)
१२. चिदाकाश की चिन्मयी लीला
१३. वैष्णवीय विज्ञान (द्वितीय संस्करण)
१४. विरह वल्लरी
१५. प्रेम वल्लरी (द्वितीय संस्करण)
१६. विनय वल्लरी (तृतीय संस्करण)

१७. पंच शतक (द्वितीय संस्करण)
१८. वैदेही दर्शन
१९. मिथिला माधुरी
२०. हर्षण सतसई (द्वितीय संस्करण)
२१. उपदेशामृत (द्वितीय संस्करण)
२२. आत्म विश्लेषण
२३. राम राज्य
२४. सीताराम विवाहाष्टक
२५. प्रपत्ति दर्शन (द्वितीय संस्करण)
२६. सीता जन्म प्रकाश
२७. लीला विलास
२८. प्रेम प्रभा
२९. श्री लक्ष्मीनिधि निकुंज की अष्टयामीय सेवा
३०. आत्म रामायण
३१. मातृ स्मृति
३२. रस विज्ञान

प्रकाशन विभाग श्रीराम हर्षण कुंज, नया घाट, परिक्रमा मार्ग, श्री अयोध्या, जिला– साकेत (उ.प्र.) २२४ १२३.

: प्रकाशक :
प्रकाशन विभाग, श्री रामहर्षण कुंज, परिक्रमा मार्ग,
अयोध्या (उत्तर प्रदेश) - २२४ १२३

दूरभाष : ०५२७८-२३२३१७